International Journal of Applied Research 2016; 2(10): 521-524

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(10): 521-524
www.allresearchjournal.com
Received: 15-08-2016
Accepted: 17-09-2016

अनंत राम मिश्र
Associate Professor,
GB Pant Social Science Institute, Allahabad, Uttar Pradesh, India

Correspondence
अनंत राम मिश्र
Associate Professor,
GB Pant Social Science Institute, Allahabad, Uttar Pradesh, India

डा. अंबेडकर और सामाजिक समावेशन पर कुछ विचार

अनंत राम मिश्र

प्रस्तावना

अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 में महाराष्ट्र में हुआ था। वह एक ऐसा समय था जब महाराष्ट्र में महात्मा फुले तथा उनके द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज ने जातीय ऊँच–नीच के खिलाफ एक आंदोलन छेड़ रखा था। अंबेडकर ने न केवल उस आंदोलन को आगे बढाया बल्कि उसे एक राजनैतिक स्वर दिया। बीसवीं शताब्दी को प्रजातंत्र और मुक्ति की शताब्दी कहा जाता है। इसमें दलितों और महिलाओं की मुक्ति का सवाल सबसे महत्वपूर्ण सवाल बनकर उभरा। इस सवाल को एक राजनीतिक सवाल बनाने में अंबेडकर की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने देखा कि केवल समाज सुधार की गाँधीवादी सदिच्छा से दलितों की मुक्ति संभव नहीं है। इसके लिए दलितों को राजनीति को समझना और उसमें आना आवश्यक है। उन्होंने जब कहा कि शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो तो इसमें यह निहित था कि भविष्य में दलितों को अपना राजनीतिक स्वर मजबूती से रखना होगा जिससे उनको हर उस स्पेस में जगह मिलेगी जहाँ से उनको बहिष्कृत किया जाता रहा है। अंबेडकर इस बात को भली भाँति जानते थे कि शिक्षा को सार्वात्रिक वयस्क मताधिकार देने या न देने का आधार बनाया जा सकता है। शिक्षा राज्य की जिम्मेदारी है जिसमें दलितों को जानबूझकर पीछे रखा जा रहा था। अतः इस बहिष्करण को समाप्त करने के लिए सार्वात्रिक वयस्क मताधिकार चाहिए। [1] बहिष्करण केवल शिक्षा से ही नहीं समाप्त हो सकता था। इसके लिए कानून की मदद भी जरूरी थी। अनुच्देद 17 को प्रारूपित करते समय संविधान सभा में अस्पृश्यता के उन्मूलन और उसकी प्रतिदिन के व्यवहार में रोकथाम के लिए जो बहसें हुईं, वे इसका प्रमाण हैं कि बहिष्करण को रोकने के लिए राज्य की स्पष्ट भूमिका होनी चाहिए।

राज्य की यह भूमिका इससे कहीं आगे जाती है। आधुनिक भारत में दलितों को आर्थिक स्तर पर न केवल बहिष्कार का सामना करना पड़ता है बल्कि इससे उनका जीवन के किसी भी क्षेत्र में बढ़ना मुश्किल हो जाता है। सुखदेव थोराट और उनके साथियों ने बताया है कि कि लोग बीमारी से नहीं बल्कि दवा न खरीद पाने से मर जाते हैं। यह एक बहिष्करण ही है जो आपको डाक्टर की दुकान तक पहुँचने से रोकता है। [2] यह बहिष्करण ही है जो आपको खेती करने लायक जमीन, नौकरी, शिक्षा, मकान से दूर रखता है और जगह–जगह आपको अपमान और अवमानना का सामना करना पड़ता है। इस अपमान और अवमानना पर बात की जानी चाहिए जब हम बहिष्करण पर बात करें। ओमप्रकाश वाल्मीकि और डा. तुलसीराम की आत्मकथाएँ इस अपमान और अवमानना को अनुभवमूलक तरीके से बाहरी दुनिया से साझा करती हैं। तो यहाँ पर मेरे कहने का आशय यह है कि बिना बहिष्करण को समझे बिना समावेशन को नहीं समझा जा सकता है। बहिष्करण अनुभव के साथ प्रक्रिया भी है जिसे जाने समझे बिना दलितों की दुर्दशा को न तो समझा जा सकता है और न ही उसमें कोई सैद्धांतिक हस्तक्षेप किया जा सकता है। वास्तव में राज्य द्वारा निर्देशित लोकतंत्र दलित मुक्ति के जो उपाय सुझाता है, उसकी पहुँच सीमित है और वह लोगों को केवल गरीब मानकर गरीबी उन्मूलन के उपाय सुझाता है। लोग राज्य पर ज्यादा निर्भर तो होते ही जाते हैं, इसके साथ वे राज्य द्वारा निर्देशित लोकतंत्र को वास्तविक लोकतंत्र मानने की भूल कर बैठते हैं। राज्य द्वारा निर्देशित लोकतंत्र कुछ को समावेशित कर अधिकांश को एक बार फिर बहिष्कृत कर देता है, विशेषकर उनको जिनकी संख्या कम है। बद्री नारायण इस कमजोरी और उसके प्रभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। [3]

अंबेडकर पूर्व समय में सामाजिक समावेश की लड़ाई

अंबेडकर के जन्म के पूर्व से ही सामाजिक बहिष्कार के खिलाफ तथा सामाजिक समावेश के लिए संघर्ष शुरू हो गया था। यह संघर्ष तीन तरफ से था। एक ओर दक्षिण में कुछ देसी रियासतें थीं जो दलितों–पिछडों के लिए कुछ सकारात्मक कदम उठा रहीं थीं। उदाहरण के लिए मैसूर, बडौदा और कोल्हापुर की रियासतें, जिन्होने सर्वप्रथम अल्पसंख्यकों और पिछड़ों के लिए आरक्षण का प्रावधान

किया था। देश की बाकी जातियों की तरह ही दलितों के पढ़ने और व्यवसाय करने से कोई समस्या नही थी। ब्रिटिश सेना में सैनिकों के रूप में और काम करने वाले घरेलू नौकरों के रूप में दलितों की भर्ती बडे पैमाने पर हुई थी। सेना से जुड़े लोगों के लिए बने सैनिक स्कूलों में दलितों के बच्चे भी पढ़ने जाते थे। स्वयं अंबेडकर की शिक्षा भी ऐसे ही एक सैनिक स्कूल से हुई थी। ब्रिटिश राज ने कुछ कानून भी बनाये जिनकी स्वभाविक टकराहट ब्राह्मणवादी व्यवस्था से होती थी। लार्ड मैकाले ने हिंदुस्तान में क्लर्क पैदा करने के लिए नई शिक्षा व्यवस्था लागू की। हालांकि यह शिक्षा व्यवस्था ऐसे हिंदुस्तानियों को पैदा करने के लिए थी जो अंग्रेजी राज कायम रखने में मदद करें। फिर भी यह उस पुरानी गुरुकुल व्यवस्था से बेहतर थी जिसके दरवाजे दलितों और पिछड़ी जातियों के लिए बंद थे। महाकाव्य 'महाभारत' के पात्र एकलव्य की कहानी इसी भेद–भाव को दर्शाने के लिए आज भी एक प्रतीक के तौर पर प्रयोग की जाती है। इसी प्रकार जहाँ ब्राह्मणवादी व्यवस्था में एक जैसे अपराधों के लिए भी अलग–अलग जातियों के लोगों के लिए सजाएं थीं; यहाँ तक कि अपराध भी जाति से निरपेक्ष नहीं था, वहीं ब्रिटिश सरकार ने भारतीय दंड संहिता लागू की थी जो न्यायशास्त्र के आधुनिक नियमों के आधार पर थी। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार के कदम भी, चाहे वे जिस भी मकसद से लागू हुए हों, ब्राह्मणवादी व्यवस्था से टकरा रहे थे।

सामाजिक बहिष्कार के खिलाफ तथा समान अधिकार अथवा सामाजिक समावेश के सवाल पर तीसरी तथा सबसे मजबूत चोट जातिवाद, रूढ़िवाद तथा पितृसत्ता के खिलाफ चल रहे आंदोलनों से आई। अंबेडकर के अपने प्रदेश महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले तथा उनके द्वारा स्थापित सत्य शोधक समाज ने असमानता पर आधारित जातिवादी व्यवस्था के खिलाफ महत्वपूर्ण जन जागरण अभियान चलाया। शिक्षा विशेषकर स्त्री शिक्षा के महत्व को समझते हुए महात्मा फुले ने सर्वप्रथम अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को पढाया। फिर 1848 में पुणे में दोनों ने मिल कर लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला जिसमें पढ़ाने का कार्य सावित्री बाई फुले करती थीं। इस प्रकार अपनी लगन और महात्मा फुले के सहयोग से सावित्री बाई फुले देश की पहली स्त्री शिक्षिका बनीं।

सामाजिक समावेश की लडाई और अंबेडकर का जीवन

अंबेडकर के जीवन ने जितना भारतीय समाज के यथास्थितिवाद को टक्कर दी, उतना शयाद किसी ने दी हो। इसलिए यहाँ हम उनके उस जीवनी पर बात करेंगे जिसे भारत की समाज व्यवस्था और औपनिवेशिक शासन ने रूप दिया था। अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य प्रदेश के महू शहर में महार नामक एक अछूत जाति के एक परिवार में हुआ था, जो 1904 में बम्बई चला आया। उनके पिता उनकी पढाई में बहुत दिलचस्पी लेते थे। 1907 में हाई स्कूल पास करने के बाद बड़ौदा के शासक मराठा सायाजीराव गायकवाड़ ने अपने राज्य से वजीफे का प्रबंध कर उनकी आगे की पढाई का प्रबंध किया। वहाँ एलफिंस्टन कालेज से उन्होने 1913 में अंग्रेजी तथा फारसी में बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की पढाई के लिए उन्हें वजीफा मिला जिससे वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय में पढ़ने गये। 1916 में वे लंदन गये जहाँ उन्होंने बैरिस्टर–एट–लॉ के लिए'ग्रेज इन' मे पंजीकरण कराया तथा डॉक्टरेट इन इकोनॉमिक्स के लिए लंदन स्कूल आफ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंस में दाखिला लिया। छात्रवृत्ति की अवधि समाप्त होने पर उन्हें भारत लौटना पडा। 1917 से 1920 तक अपने कमाए हुए पैसों से कुछ पैसे बचा कर तथा कोल्हापुर के महाराज से प्राप्त उपहार राशि से वे पुनः लंदन गये। अपने विचारों और ब्रिटिश नीति की अत्याधिक आलोचना करने के कारण उनके शोध प्रबंध को स्वीकृति नहीं मिली, जो बाद मे संशोधित शोध प्रबंध को ही मिल सकी। अप्रैल 1923 को वे बम्बई लौट आये।

इस पूरे विद्यार्थी जीवन में कई बार अंबेडकर को जातीय उत्पीड़न का सामना करना पडा था। नाई उनके बाल काटने से इन्कार करता था। वे अछूत होने के कारण संस्कृत नहीं पढ़ सकते थे। बड़ौदा में कालेज की पढाई के दौरान उन्हें भोजन करने अछूतों के मोहल्ले जाना पडता था। केवल सोने के लिए आर्य समाज के कार्यालय में व्यवस्था हो गई थी। उन्हें कहीं काम नहीं मिला। छात्रवृत्ति के एवज में बड़ौदा में काम करने के दौरान ब्राह्मण जाति के क्लर्क और दूसरे अधीनस्थ कर्मचारी अभद्र भाषा का प्रयोग करते थे। वे उनसे दूरी बनाते थे और कागज़ात भी फेंक के देते थे। अफसरों के क्लब में भी उन्हें दूर बैठाया जाता था, खेल में भाग नहीं लेने दिया जाता था। स्थिति यहाँ तक गम्भीर थी कि उन्हें आवास पारसी नाम धारण करने पर पारसी आवास परिसर में मिला और वहाँ भी जब पारसियों को उनकी जाति का पता चला तो उन्होने उनके आवास को चारों तरफ से घेर लिया और उन्हें मारने पर आमादा थे, और घर के मालिक ने तुरंत उन्हें अपने घर से निकाल दिया। इन कड़वे निजी अनुभवों और अपने बेहद विस्तृत अध्ययन के चलते ही अंबेडकर का एक अध्ययनशील लडाकू व्यक्तित्व का निर्माण हो सका। 1920 में उन्होने द्विमासिक पेपर मूकनायक का सम्पादन किया। सामाजिक बहिष्कार उनके आंदोलनों का प्रमुख बिंदु हुआ करता था। लंदन से लौटने के बाद उन्होने सबसे पहले 9 मार्च 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किय। सामाजिक बहिष्कार के खिलाफ बाबा साहेब ने बहुआयामी संघर्ष किए।

इन संघर्षों को हम तीन हिस्सों में बाँट सकते हैं – पहला सामाजिक और सांस्कृतिक सवालों पर प्रचार तथा जन कार्यवाहियाँ, दूसरा दर्शन के स्तर पर न केवल ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती देना बल्कि तल्कालीन राजनैतिक आंदोलन की भी आलोचना करना तथा तीसरा राजनैतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से दलितों के अधिकारों को आगे बढाना। अंबेडकर ने सामाजिक और सांस्कृतिक सवालों पर प्रचार और जनकार्यवाहियों पर बहुत जोर दिया। एक वर्ष तक निकाले गये पत्र मूकनायक का उन्होंने सम्पदन किया। 1930 में जनता नामक एक साप्ताहिक पत्र की स्थापना की। एक अच्छे वक्ता के रूप में उन्होने कई बार लोगों को सम्बोधित किया। संगठन को उन्होने बहुत महत्व दिया। उन्होने इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन ऑफ इंडिया तथा अंतिम समय में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया जैसे संगठनों की स्थापना कर के दलित राजनीति को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दलितों के सम्मेलनों में वे दलित महिलाओं की अलग से बैठक करके नेतृत्व में महिलाओं की भूमिका सुनिश्चित करने का प्रयास करते थे। वे सामाजिक परिवर्तन के लिएसंघर्ष को बेहद आवश्यक मानते थे। उन्होने ब्राह्मणवादी संहिता को स्थापित करने वाले धर्मग्रंथ मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से जलाया। सार्वजनिक स्थलों पर अपनी दावेदारी को जताने की शुरुआत उन्होने पीने के पानी के सवाल से की। कोंकण के छोटे से शहर महाड़ में उन्होने दलितों को ले कर पानी के एक सार्वजनिक टैंक से जा कर पानी पिया। इससे क्रोधित हो कर अन्य हिंदू जातियों के लोगों ने दलितों की पिटाई कर दी और बाद में ब्राह्मणों ने टैंक का शुद्धिकरण किया। इस घटना तथा इसके बाद होने वाले दंगों की चर्चा पूरे महाराष्ट्र में हुई। इस घटना ने पूरे राज्य के दलित समुदाय के लोगों को जागरूक कर दिया और इसका प्रचार पूरे देश में होने लगा। दलितों के मंदिर प्रवेश के आंदोलन को भी उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त था। 1956 में अपनी मृत्यु से कुछ पहले ही उन्होने हजारों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपनाया। यह धर्मांतरण एक प्रकार का जातिवाद विरोधी अभियान था। हिंदू धर्म द्वारा जातिवाद को मान्यता दिये जाने के कारण वे मानते थे कि हिंदू धर्म के भीतर दलितों का उत्थान नहीं हो सकता। इसलिएउनका

यह कथन बहुचर्चित है कि उन्होने हिंदू धर्म में जन्म लिया है जिस पर उनका कोई जोर नहीं था पर वे हिंदू धर्म में मरेंगे नहीं। बौद्ध धर्म को उन्होने समता, दयालुता और विवेक का पोषक माना और इसीलिएउसे अपनाया। उनके धर्मांतरण में एक अन्य महत्वपूर्ण बात भी है कि उन्होने धर्म परिवर्तन के दौरान अपने अनुयायियों को 22 शपथ दिलायी थी जो मुख्य रूप से जातिवाद और रूढ़िवाद के खिलाफ तथा समानता और विवेक के पक्ष में थीं। इस प्रकार अंबेडकर ने दलितों को शिक्षित करने, संगठित करने और उन्हें संघर्ष में उतारने में महती भूमिका निभाई।

अंबेडकर ने दर्शन के स्तर पर भी बेहद महत्वपूर्ण कार्य किया। सामाजिक और राजनितिक स्तर पर दो महत्वपूर्ण विमर्शों में उनका एक बडा योगदान है। पहला प्रश्न दलित उत्थान से जुडा हुआ है। जहाँ महात्मा गांधी वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुए हिंदू धर्म के भीतर सुधार कर के दलितों की स्थिति सुधारने के पक्ष में थे, एक समूह जातियों के बीच सामंजस्य की वकालत कर रहा था, वहीं अंबेडकर की किताब का शीर्षक ही है "एनहिलेशन आफ कास्ट" अर्थात जातियों का उन्मूलन। अंबेडकर न केवल जातियों का उन्मूलन चाहते थे बल्कि वे ये भी मानते थे कि चातुर्वर्ण व्यवस्था के कायम रहते ये सम्भव नहीं है। उन्होने धर्मों का भी विस्तृत अध्ययन किया था और इसी आधार पर बुद्ध को तथा बौद्ध धर्म को समानता, दयालुता तथा विवेक के निकट पाया था। उन्होने बौद्ध दर्शन पर पुस्तकें भी लिखीं हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण विमर्श है राष्ट्र निर्माण के संदर्भ में। एक आधुनिक राष्ट्र का सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक ढांचा कैसा हो, इस पर एक विस्तृत समझ रखने वालों में से एक महत्वपूर्ण नाम अंबेडकर का है। में एक इसीलिए रामचंद्र गुहा ने उन्हें न केवल आधुनिक भारत के निर्माताओं में एक माना है बल्कि वे उन्हें 'वाइज डेमोक्रेट' माने हैं। वे भारत का संविधान बनाने वाली सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। सामाजिक समावेश, भारत की उनकी संकल्पना में गहरे से समाहित था। जाति के रहते कोई राष्ट्र नहीं हो सकता; महात्मा फुले की इस समझ को ही आगे बढाते हुए उन्होने सामाजिक समावेश पर बल दिया। राजनैतिक ढाँचे में वे लोकतंत्र के प्रबल हिमायती थे। अभिव्यक्ति की आजादी, विरोध का अधिकार, संघीय ढाँचा, धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों के प्रति न केवल उनकी गहरी समझ थी बल्कि उन्होने संविधान के माध्यम से इन्हे संस्थागत भी किया। अंबेडकर का सपना एक समतामूलक समाज का था। जहाँ वे एक ओर राजनैतिक जनतंत्र के महत्व को बखूबी समझते थे, वहीं दूसरी ओर वे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक बराबरी के आयामों के अंतर्संबंधों को भी जानते थे। उन्होने इस बात को भारत के संविधान के लागू होने के समय भी कहा था, जब उन्होंने अंतर्विरोधों में प्रवेश करने की बात कही थी कि एक ओर राजनीतिक क्षेत्र में बराबरी होगी, वहीं दूसरी ओर आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में गैर–बराबरी मौजूद है। उन्होने कहा था कि सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र में गैर–बराबरी के चलते राजनैतिक क्षेत्र में बराबरी के सामने भी खतरा मंडराता रहेगा।

सामाजिक समावेश की इस लडाई में अंबेडकर ने कई स्थानों पर प्रतिनिधित्व कर दलितों के अधिकारों को आगे बढाया। बम्बई विधान परिषद के सदस्य के रूप में उन्होने सर्वाधिक महत्वपूर्ण महार संबंधी विधेयक की पैरवी की थी। 1928 में उन्होने साईमन कमीशन को एक सौंपा था। इसमें उन्होने राज्यों की स्वायत्तता तथा व्यस्क मताधिकार, मुस्लिमों, अछूतों, एंग्लो–इंडियन और गैर–ब्राहमणों के लिए आरक्षण की बात की थी। उनके दलित समर्थकों ने इसे 'मैनिफेस्टो आफ दलित ह्यूमन राईट्स' कहा है। ऐसा एक अन्य महत्वपूर्ण अवसर था गोल मेज सम्मेलन में अछूतों के प्रतिनिधि के रूप मे अपनी बात रखने का अवसर। वहाँ मुस्लिमों की ही तर्ज पर बाबा साहेब ने अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की माँग की, जिसके अंतर्गत कुछ विशेष सीटें केवल दलित वर्गों द्वारा चुनी जानी थीं। महात्मा गाँधी ने इसे हिन्दू धर्म के लिए खतरे के रूप में देखा और आमरण अनशन की घोषणा की। इस दबाव में हिन्दू नेता और दमित समुदाय के नेताओं के बीच में 1932 में बहुचर्चित पूना पैक्ट हुआ। इसके अनुसार पृथक निर्वाचन के लिए आवंटित 78 सीटों की जगह कुल 148 सीटें दमित वर्गों के लिए आरक्षित की गयीं। पर बावजूद इसके अछूतों ने अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार खो दिया। दलित तबकों के समुचित प्रतिनिधित्व के लिए हर संभव प्रयास करने का आश्वासन दिया गया। अंबेडकर को वाइसराय की कार्यकारी समिति का सदस्य नियुक्त किया गया और उन्होंने अनुसूचित जातियों की समस्याओं पर एक ज्ञापन सौंपा जिसमें उन्होने सरकारी सेवाओं में आरक्षण, छात्रवृत्ति, ठेकों में हिस्सेदारी आदि माँगी। इन मांगों के आधार पर 1942 में प्रथम बार केंद्रीय सेवाओं में 8.5 प्रतिशत आरक्षण दिया गया। अंबेडकर ने संविधान निर्माण में अपनी भूमिका निभाही और दलितों तथा अन्य हाशिए के लोगों के पक्ष में पुरजोर आवाज उठायी। वे स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री बने और हिंदू महिलाओं को अधिक समानता दिलाने वाले कानून, 'हिंदू कोड बिल' के पक्ष में आवाज बुलंद की। यहाँ तक कि इसी प्रश्न पर उन्होने इस्तीफा भी दे दिया था। इस प्रकार अपने बहुआयामी संघर्ष के द्वारा बाबा साहेब डा0 भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक समावेश की लडाई को न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उस पूरे आंदोलन को एक राजनैतिक स्वरूप भी दिया।

अंबेडकर ने एक प्रबुद्ध भारत की कल्पना की थी। गेल ओमवेट ने उनकी जो जीवनी लिखी है, उसका नाम ही है– अंबेडकर : प्रबुद्ध भारत की ओर। इस प्रकार के भारत में निश्चित ही अंबेडकर को एक समादृत स्थान मिलना था। उनकी आलोचना भी होनी थी। कभी–कभी यह आलोचना उनके विचारों से ज्यादा उनके व्यक्तिगत जीवन की गयी है जो बहुत ही उथली है। अरूण शौरी ने फिलहाल यही किया। एक दूसरे छोर पर वे अंबेडकरवादी हैं जिन्होंने अंबेडकर को ईश्वर मान लिया और उनके विचारों को सान पर नहीं चढ़ाया है। फिर भी उनकी आलोचना की जा सकती है जिसका सबसे बेहतरीन उत्तर अंबेडकर स्वयं देना चाहते। अंबेडकर ने शहरों को मुक्ति का स्थल माना था जहाँ दलितों को उस अत्याचार से मुक्ति मिल सकती थी जो वे गाँवों में सह रहे थे। शहरों में जाति व्यवस्था कमजोर हो जाती और वे रोजी रोजगार कर सकते थे जिससे उनका आर्थिक सबलीकरण होता। लेकिन जैसा भारत के शहरों के अनुभव दिखाते हैं, ऐसा हो नहीं सका है। स्लम का फैलाव दलितों के शहरों की ओर प्रवसन की दिशा दिखाता है। [4] यह बताता है कि मुक्ति की राहें केवल शहर में ही नहीं हैं। शहर अपने आपमें बहुतों को समावेशित करता है। वह जाति नहीं पूछता है लेकिन शहर में रहने के लिए अच्छी शिक्षा और नौकरी चाहिए, जो अभी दलितों के पास नहीं है। दूसरी तरफ जो उनके पास है, उसे शहर और विकास ने छीन लिया है। शहर ने उनके पेशों को छीनकर उनकी रोजीरोटी को मिट्टी में मिला दिया है। उन्हें दर–दर भटकने के लिए छोड़ दिया है। वे समुदाय जो बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में सम्मानित समुदाय थे, वे अब संसाधनों पर हकदारी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। [5] ऐसे में अंबेडकर को फिर से पढ़ा जाना जरूरी हो जाता है। अंबेडकर पर अपने एक सारगर्भित और नवीन नजरिए के लिए डी. आर. नागराज को फिर से पढ़ा जाना चाहिए। उन्होंने कहा था कि आधुनिकता और विकास ने पिछड़े और दलित समुदायों के पेशों की हत्या कर उन्हें अपवंचना में पहुँचा दिया। [6] हम जब आज समावेशन की बात कर रहे हैं तो इस बहिष्करण को भी समझने का प्रयास करें।

संदर्भ

1. वेलेरियन रोड्रिग्ज. इसेंशियल राइटिंग्स आफ बी. आर. अंबेडकर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली में अंबेडकर का लेख *फ्रेंचाइजी* देखिए, 2002; 65-77.
2. सुखदेव थोराट. भारत में दलितः सामान्य लक्ष्य की खोज, सेज एवं रावत पब्लिकेशंस से संयुक्त रूप से प्रकाशित, नई दिल्ली 2011.
3. बद्री नारायण, द फ्रैक्चर्ड टेल्सः इनविजिबल इन इण्डियन डेमोक्रेसी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2016.
4. रमाशंकर सिंह एवं विभूत नारायण पाण्डेय. काम की तलाश में, हाशिये की आवाज, 2012; 7(4).
5. रमाशंकर सिंह. बंसोड़, बांस और लोकतंत्र, प्रतिमान, जनवरी–जून, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2015.
6. डी. आर. नागराज. द फ्लेमिंग फीट, पर्मानेंट ब्लैक, रानीखेत 2010.